फ़िल्म समीक्षा : सांड की आँख

जुनून, जिद और ज़ज़्बा ये केवल अल्फ़ाज़ नहीं बल्कि ज़िन्दगी की राह और मंज़िलें आसान कर देने वाली ताकतों के ही नाम हैं । फ़िल्म सांड की आँख इन दिनों ऐसी ही ताकत का एहसास दिला रही है । अर्जुन के अचूक निशाने की प्रेरणा के साथ-साथ तापसी-भूमि की जुझारू जोड़ी, साहस और बुलंद इरादों की अहमियत की दास्तान लेकर जोशीले अंदाज़ में सामने आयी है। मैसेज और मनोरंजन के मद्देनजर मैंने यह फ़िल्म बड़े लुत्फ के साथ बिलासपुर में देखी ।

बागपत के जोहर गांव के तोमर परिवार की बहू चंद्रो और प्रकाशी अपनी रोजमर्रे की ढर्रे वाली बंदिशों की ज़िंदगी के बीच रहकर भी कुछ नया कर दिखाने की ठान लेती हैं । जो है, जैसा है उसे मान लेने के बदले जो होना चाहिए और जैसा होना चाहिए के सपने देखकर उसे सच्चाई में बदलने की पहल, दोनों दादियों को नियति के हाथों का खिलौना नहीं बनने देती । इसी बिंदु पर सांड की आँख एक मूवी से आगे निकलकर जीवन में उम्र के किसी भी पड़ाव पर सीख का नया संवाद रचने की प्रेरणा बन जाती है ।

बकायदा ट्रेनिंग लेकर ये शूटर दादियां अपनी शूटिंग टैलेंट को घर की मर्दों वाली एकांगी हुकूमत और उसकी चौहद्दी से बाहर लाने में बड़ी कुशलता, विवेक और समझदारी के साथ सफल हो जाती हैं । जोहर गांव के परिवेश की भाषा, परिधान और चाल चलन के सुंदर मेल से तापसी-भूमि के किरदार दर्शकों को खूब प्रभावित करते हैं । हमउम्र पीढ़ी से लेकर परिवार में किशोर अवस्था की अपनी बच्चियों को भी ढर्रे की ज़िंदगी से बाहर निकालकर खुद को प्रूव कर दिखाने में इन दोनों अभिनेत्रियों ने लाज़वाब भूमिका निभायी है ।

रास्ते के पत्थरों को सोपानों में बदलकर आगे बढ़ने वाली दादियों के किरदार को एक्सप्लोर करने में सपोर्ट के लिहाज से अगर देखें तो प्रकाश झा, विनीतकुमार सिंह, पवन चोपड़ा भी कहीं पीछे नहीं दिखते । बल्कि अपना – अपना अलहदा प्रभाव छोड़ते हैं ।

सांड की आंख में पार्श्व गीत-संगीत का अलग महत्व है । वह कर्णप्रिय है, आह्लादकारी भी । बावजूद इन बातों के, फ़िल्म में मेन कैरेक्टर्स की ड्रेसिंग की एकरूपता कुछ खटकती सी है । फिर भी निदेशक तुषारकुमार, सांड की आंख में आंखें डालकर, दर्शकों को बांधे रखने में कामयाब हुए हैं । बहरहाल ये फ़िल्म एक तरह की सीख भी है । इसलिए तारीफ़ की बेशक हकदार है ।

डॉ. चन्द्रकुमार जैन प्रोफेसर हैं व सामाजिक व राष्ट्रीय विषयों पर लिखते हैं।